वीर संवत २४९२, फाल्गुन शुक्ल ३, बुधवार

दि. २३-२-१९६६, ढाल-६, श्लोक-९. प्रवचन नं. ५१

'दौलतरामजी' कृत 'छहढाला' का नौंवाँ श्लोक। स्वरूपाचरण चारित्र को यहाँ शुद्धोपयोग कहते हैं। जो आत्मा है, वह शुद्ध चैतन्य अनाकूल आनन्द और शुद्धस्वरूप से परमात्मस्वरूप अपना, उसमें बिराजमान आत्मा है। पुण्य-पाप तो विकार आचरण है, अशुद्ध उपयोग का आचरण है। जड़ की क्रिया है, (देह) अजीव की पर्याय का आचरण है, जड़ की अवस्था (है)। आत्मा अपना शुद्धस्वरूप एक समय में ज्ञायक (है)-ऐसी दृष्टि होकर अन्दर में स्वरूपाचरणचारित्र को प्रगट करते है तो उसको मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव होता है। समझ में आया ?

पहले सम्यक् अनुभवदृष्टि, प्रथम धर्म प्रगट होता है, प्रथम धर्म प्रगट होता है, तब आत्मा शुभ-अशुभपरिणाम की रुचि छोड़कर, अपने स्वरूप की खोज में लगता है। समझ में आया ? खोज क्या ? अन्दर में मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? शरीर, वाणी, मन नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, हाँ ! वह भी मैं नहीं। मैं कौन हूँ ? ऐसा अन्तर में स्वरूप की समझन करने में अथवा स्वरूप की खोज में (लगता है कि) यह क्या चीज है ? ऐसी चीज की ओर सन्मुख होता है, उसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है और साथ में स्वरूपाचरणचारित्र भी प्रगट होता है। समझ में आया ? स्वरूपाचरणचारित्र का इस ओर लिया है। अनन्तानुबन्धी किसको कहें ? स्वरूपाचरण का घात करे, उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं-ऐसा लिखा है। मैं पढ़ा था, भाई ने आज निकाला। 'प्रवेशिका' में है।

मुमुक्षु :- 'धवल' में भी है।

उत्तर :- उसमें तो है, लेकिन इसमें लिखते हैं। '(जैन सिद्धान्त प्रवेशिका)' 'गोपालदासजी' लिखते हैं। 'गोपालदास' न ?

मुमुक्षु :- स्वरूपाचरण..

उत्तर :- पहला स्वरूपाचरण। लेकिन वह तो शुद्ध आत्मानुभव चारित्र। वहाँ तो शुद्ध इतना ही रखा है। लेकिन अनन्तानुबन्धी किसको कहना ? वहाँ स्पष्टीकरण किया है। अनन्तानुबन्धी किसको कहते हैं ? अनन्त बन्ध, संसार का पहला कषायभाव है। अनन्त संसार का कारण (है)। उसका पहले आत्मा में... सूक्ष्म बात है, भाई ! अनन्तकाल से उसने सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरण कभी प्रगट किया नहीं, और प्रगट हुए बिना उसको अन्तर में संवर, निर्जरा होती नहीं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं कि, भगवान आत्मा शुद्ध पिंड, चैतन्य ज्ञायकघन आनन्द, उसके सन्मुख होने से जो शुद्धस्वरूप की अन्तर में प्रतीति होना, वह तो सम्यग्दर्शन (है)। और उस शुद्धस्वभाव का ज्ञान होना, यह आत्मा, यह आत्मा-ऐसा ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान (है) और उसमें लीनता होना, एकाग्रता से लीनता होना वह स्वरूपाचरण चारित्र (है), जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव से प्रथम होता है। भाई ! बहुत सूक्ष्म बात है। ऐसा कहीं सुनने मिले नहीं। दूसरा मिले तो वहाँ सारा दिन पैसे (की बात), धंधे की बात या दया पालो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत पालो। आहा.. ! समझ में आया ? वह शुभभाव है। शुभभाव है, होता है।

मुमुक्षु :- उपाय है न ?

उत्तर :- उपाय है नहीं। उपाय तो आत्मा का यह उपाय करते हैं, तब व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प हो, उसको बाह्य निमित्तरूप से गिनने में आता है। यह समझने की चीज है। आहा..हा... ! स्वरूपाचरणचारित्र कैसी दशा होती है, वह बात करते हैं।

'जिस स्वरूपाचरण चारित्र में ध्यान, ध्याता और ध्येय-इन तीन का भेद नहीं होता..' समझ में आया ? पहले तो वह कहा था न ? कि, ध्याता, ध्यान, ध्येय का विकल्प नहीं। पहले मूल पाठ में आया न ? उसका अर्थ चलता है। मैं ध्याता, ध्यान करनेवाला और यह ध्यान-एकाग्रता और यह ध्येय-पूर्ण स्वरूप। ऐसा भेदरूपी विकल्प राग है, वह भी अन्तर स्वरूप की एकाग्रता के काल में वह राग, स्वरूपाचरण में रहते हैं (तब) वह राग नहीं रहता। बुद्धिपूर्वक राग नहीं रहता।

प्रथम स्वरूपाचरण में मैं ध्यान करनेवाला, ध्याता हूँ, यह ध्यान है, यह ध्येय-शुद्ध स्वरूप मेरा ध्येय है वह भी एक विचार, विकल्प, राग है। आहा.. ! जिस स्वरूप की अन्तर दृष्टि में शुद्धता का ध्येय बनाकर, यह ध्येय है-ऐसा (विकल्प) भी नहीं, परन्तु अन्तर शुद्धस्वरूप की ओर सन्मुख होने से, मैं सन्मुख होनेवाला और में सन्मुख होता हूँ, ऐसी भी जहाँ राग की भेदबुद्धि नहीं रहती। ध्याता-ध्यान-ध्येय तीन का भेद नहीं होता।

'**जहाँ वचन का...**' भेद नहीं। ध्याता, ध्यान करनेवाला, चौथे गुणस्थान में, पाँचवे या सातवें में, अपना स्वरूप ध्यान में लेते हैं, तब शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखंड अभेद की ओर लीनता, एकाग्रता होने से मैं ध्यान करनेवाला या ध्याता-ऐसा भेद-विकल्प नहीं रहता। उसका नाम स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं, आ..हा... ! बहुत सूक्ष्म बात (है)। बाद में विकल्प, राग उठता है, दया, दान, भक्ति, व्रतादि या शुभ-अशुभरागादि, परन्तु स्वरूप की ओर दृष्टि हुई और स्वरूपाचरण की एकाग्रता हुई, वह हमेशा रहती है। समझ में आया ?

जहाँ सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूपाचरण हुआ, चैतन्यज्योत अखंड ज्ञानमूर्ति.. सम्यग्दर्शन उसको कहा कि सारा एकरूप चैतन्य ज्ञायकभाव भूतार्थ का अन्तर आश्रय करना। उस सम्यग्दर्शन के काल में ही प्रतीति हुई, सम्यग्ज्ञान हुआ और उतने अंश में स्थिर भी हुआ। स्वरूप की ओर की लीनता (हुई)। इस स्वरूपाचरणचारित्र में भेद लक्ष्य में नहीं आता। अकेला अभेद (होता है)। यह अभेद (है), ऐसा भी विकल्प नहीं। सूक्ष्म बात है। उसने कभी धर्म की प्रथम सीड़ी कैसे प्राप्त होती है, उसने कभी लिया ही नहीं। बाहर में ही बाहर में अनादि से गँवाया। अब तो उम्र भी (बड़ी) हो रही है या नहीं ? क्यों ?

कहते हैं, देखो ! 'दौलतरामजी' 'छहढाला'में ऐसा कहते हैं। साधारण गृहस्थों को कंठस्थ होता है। लेकिन उसका अर्थ क्या ? तोता। वस्तु क्या है ? कंठस्थ कर ले लेकिन तोते की भाँति। क्या चीज है ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने कहा, वही 'दौलतरामजी' छठी ढाल में स्वरूपाचरण का स्वरूप (कहते हैं)। पहले लक्ष्य में भी आया नहीं कि, क्या चीज (है) ? कैसे प्राप्त होती है ? कहते हैं कि, पुण्य-पाप की रुचि तो छोड़ दे। पाप में लाभ नहीं, पुण्यभाव में लाभ नहीं, देह की क्रिया से मेरी क्रिया है नहीं और एक वर्तमान समय में ज्ञान का विकास अल्प है उतना भी मैं नहीं। उसको भी अंतर्मुख मोड़कर शुद्ध चैतन्यस्वभाव

में एकाग्र होकर शुद्ध उपयोग की प्राप्ति होती है। उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शनसहित स्वरूपाचरणचारित्र कहने में आता है। आहा..हा...! भाई ! वहाँ 'रतनपुर' में मिलता नहीं और आप के रतन में भी मिले नहीं, पैसे में मिले नहीं।

मुमुक्षु :- संयोग मिले।

उत्तर :- उसके मामा के पास बहुत पैसा है। पैसा है, उसके पास ममता है। उसके पास तो कभी पैसा नहीं आता ? आत्मा के पास आता है ? वह तो दूर रहता है। मेरा है, इतनी ममता उसके पास आयी। क्यों सेठिया ? वह चीज तो आती नहीं है। चीज तो दूर रहती है।

मुमुक्षु :- तिजोरी में तो रहती है।

उत्तर :- तिजोरी तो जड़ है, पर है। तिजोरी में रहे उसमें क्या आया ? आत्मा के पास क्या आया ? आत्मा ने माना कि, मेरा है, इतनी ममता उसके पास आयी। बराबर है ? भैया !

यहाँ तो कहते हैं कि, उस ममता के परिणाम से रहित और दया, दान के शुभ विकल्प से, भाव से रहित-ऐसीचीज जो अखंडानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि करने से स्वरूप में एकाग्रता होती है, तब ऐसा भेद लक्ष्य में नहीं रहता। समझ में आया ? तब सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरण में स्वरूपाचरण प्रथम भूमिका प्रगट होती है। बाद में, ऐसी दशा होने के बाद उपयोग नहीं रहता, परन्तु स्वरूपाचरण और दृष्टि जो हुई है, वह हमेशा रहते हैं। बाद में शुभभाव आवे, दया, दान, भक्ति को पुण्य समझे। सम्यग्दृष्टि को पाप (भाव) कमाने का, विषय आदि (का) भी आता है। उसको पाप समझे। पाप-पुण्य को अपने ज्ञान में पर के रूप में समझे। अपने स्वरूप में पुण्य-पाप को एकत्व करते नहीं।

अपनी खोज में पड़ा आत्मा, अपनी खोज करके जो स्वरूप प्रगट हुआ उसके साथ पुण्य-पाप के विकल्प को मिलाते नहीं। होता है। समझ में आया ? होता है, लेकिन अपना शुद्धस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा का भान हुआ, सम्यक् भान में उसके साथ विकार को मिलाते नहीं, एकत्व होते नहीं। आहा..हा...! चाहे तो समकिती लड़ाई में हो, हाथी के होद्दे पर (बैठनेवाले) राजकुमार हो और आत्मभान हुआ हो। राजकुमार हो, बहुत पुण्य हो। लड़ाई में भी ऐसे चले। तो भी अन्तर में अनुभव की सम्यक् प्रतीति और स्वरूपाचरण स्थिरता तो उसके कभी छूटते नहीं। समझ में

आया ? अज्ञानी, आत्मा के भान बिना दया, दान, व्रत के विकल्प में पड़ा है तो उसको स्वरूपाचरण का अभाव है, इसलिये वह मात्र विकार का स्वामी है। समझ में आया ? आहा..हा..!

'**आत्मा का स्वभाव ही कर्म...**' देखो ! भगवान आत्मा...! आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। ज्ञान, आनन्द में जब एकाग्र हुआ, स्वरूपाचरण में.. स्वरूपाचरण में, तब शुद्ध स्वभाव की पर्याय सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण का भाव जो प्रगटु हुआ, वही आत्मा का काम (है)। वह आत्मा का काम (है), काम अर्थात् कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। है या नहीं ? भैया ! देखो ! '**(चिद्भाव) आत्मा का स्वभाव ही कर्म...**' कर्म अर्थात् कार्य। पुण्य-पाप (का) विकल्प दृष्टिमें से-रुचिमें से छूट गये। देह की क्रिया तो मेरी है नहीं, वह तो रुचि छूट गई। लकिन अपने स्वभाव के अनुभव काल में स्वरूपाचरण के काल में शुद्धभाव की पर्याय प्रगट हुई। शुद्ध। शुभ-अशुभ नहीं, शुद्धभाव.. शुद्धभाव। स्वभाव के आश्रय से शुद्धभाव प्रगट हुआ, वह आत्मा का कार्य, वह आत्मा का कर्म, वह आत्मा का कर्तव्य (है)। कठिन बात।

'**(चिदेश) आत्मा ही कर्ता...**' उस समय में चिदेश-चिद् अर्थात ज्ञान का ईश्वर आत्मा। चिदेश। ज्ञान का ईश्वर-अपना भगवान आत्मा, वही शुद्धभाव का करनेवाला। शुद्धभाव का करनेवाला विकल्प, राग मन्द था या मन्द है तो वह शुद्धभाव प्रगट हुआ, ऐसा नहीं। धीरे से समझने योग्य चीज है। अनन्तकाल में उसने कभी किया ही नहीं। ऐसे ही जिंदगी गँवाई, चौरासी के अवतार में चला गया। कोई पुण्य आदि किया हो, एकाद भव स्वर्गादि मिले, मिथ्यादृष्टिपने में रहा, वहाँ से निकलकर पशु योनि करके जाओ नरक, निगोद में। भैया ! आहा..हा...! अ..हो..! देह का कोई रजकण भी साथ में आनेवाल नहीं। देह का, दूसरी चीज तो कहाँ रह गई।

यहाँ तो कहते हैं कि, शुभ-अशुभभाव हुआ तो भी साथ में तो नहीं रहता। जो हुआ उसका बन्ध पड़ गया। जड़ रजकण (रहे), उसकी पर्याय में साथ नहीं (है)। अपना स्वरूप जो ज्ञानानन्द शुद्ध है, उसकी अन्तर दृष्टि और स्वरूपाचरण प्रगट किया, वह साथ में रहता है। समझ में आया ?

कहते हैं कि, वहाँ आत्मा ही कर्ता है। यहाँ तो तीन बोल समझाते हैं। वहाँ तीन भी नहीं

रहते, विचार में तीन भी नहीं रहते कि, मैं कर्ता, आत्मा करनेवाला, शुद्धभाव मेरा कर्म और मेरी चैतन्य की निर्मल पर्याय हुई वह मेरी क्रिया, ऐसी तीन भेद अन्तर स्वरूपाचरण काल में तीन भेद लक्ष्य में नहीं रहते। (भेद) होते हैं। आहा..हा... ! है न ? भैया ! क्या कहते हैं ? देखो !

'**कर्ता (चेतना) चैतन्यस्वरूप आत्मा की क्रिया होता है...**' आत्मा क्रिया। चैतन्यस्वरूप आत्मा क्रिया। कहते हैं कि, धर्म की क्रिया है या नहीं ? क्रिया होती है या नहीं ? है क्रिया, लेकिन कौन-सी क्रिया ? पुस्तक रखा है न ? देह की क्रिया धार्मिक क्रिया नहीं; अन्दर दया, दान, व्रत, पूजा का परिणाम उत्पन्न हो, वह धार्मिक क्रिया नहीं। आहा..हा... ! है ? भैया ! क्या (लिखा है) ? '**चैतन्यस्वरूप आत्मा ही क्रिया...**' चैतन्यस्वरूप आत्मा ही क्रिया होता है। आत्मा ही परिणमन (करता है)। पूर्व के राग का अभाव होकर, स्वभाव की शुद्धरूपता, चैतन्य की परिणतिरूप क्रिया (होती है) वह आत्मा की क्रिया है। आहा..हा... ! है उसमें ? कभी पढ़ा था ?

मुमुक्षु :- रोज पाठ करते हैं।

उत्तर :- डॉक्टर ठीक कहते हैं कि, रोज पाठ करते हैं। पाठ करते हैं, हाँ ! यह तो सरल सादी हिन्दी भाषा है। आहा..! ये तो 'दौलतरामजी'ने, 'बुधजन' की 'छहढाला' थी, उससे अधिक स्पष्ट बनाई। उसमें ऐसा नहीं है, उसे भी हमने देखी है। 'बुधजन' की है, उसमें से बनायी, यह तो बहुत स्पष्ट बनाई है। शास्त्र में से सार.. सार.. सार थोड़ा लेकर बना दिया।

कहते हैं कि, भैया ! तुझे अनन्तकाल में स्वरूपाचरणरूप धर्म क्रिया कभी नहीं हुई। आपके हाथ में तो पुस्तक है। समझ में आया ? आहा..हा... ! देखो तो सही। 'दौलतरामजी' कहते हैं कि, जब अपना शुद्धस्वरूप, पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप की दृष्टि करने के काल में चैतन्य की क्रिया-शुद्धपरिणति ही रहती है। राग अपनी क्रिया-ऐसा रहता नहीं। आहा..हा... ! भैया ! ओ..हो..हो... ! यहाँ मूल बात है इसलिये आज लिया। दोपहर को गुजराती। समझे ? 'नियसमार' गुजराती चलेगा।

यहाँ कहते हैं, चेतना क्रिया होती है। भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, वही अन्तर्मुख दृष्टि करने के काल में स्वरूपाचरण-स्वरूप का अनुष्ठान, स्वरूप का अनुष्ठान, उसमें चेतना की निर्मल

ज्ञानानन्द की क्रिया रहती है, वह क्रिया। कर्ता आत्मा और वही कर्म-कार्य। क्रिया क्यों (कहा) ? क्योंकि पलटन हुआ न ? क्रिया पलटन है। '**क्रिया होता है।**'

'**कर्ता, कर्म और क्रिया-ये तीनों भेदरहित एक अखंड हो जाते हैं...**' यहाँ भी तीन तो समझाया। परन्तु अन्तर दृष्टि के काल में, स्वरूपाचरण काल में, अनुभव के काल में तीन नहीं रहते, तीन एकरूप हो जाते हैं। यह कर्ता, यह कार्य और यह क्रिया-ऐसे तीन भेद नहीं रहते। तीन भेद हो जाये तो विकल्प उठते हैं। देखो ! यह 'सिद्धान्त प्रवेशिका' है, हाँ ! समझ में आया ? 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' है न ? उसमें वह लिखा है। समझ में आया ? अनन्तानुबन्धी किसको कहते हैं ? उसमें लिखा है। देखो !

स्वरूपाचरण चारित्र किसको कहते हैं ? शुद्धात्मानुभव की अविनभावि चारित्रविशेष को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। ऐसा लिखा है। अनन्तानुबन्धी किसको कहते हैं ? (वह लिखा है)। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ किसको कहते हैं ? जो आत्मा के स्वरूपाचरणचारित्र को घात करे, उसको अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं। आप का स्पष्टीकरण (आया)। यह तो 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' बालकों के लिए बनाई, उसमें से है। 'गोपालदास बरैया' है न ? भैया ! उन्होंने बनाई है।

मुमुक्षु :- ..

उत्तर :- शास्त्रमें से निकाला है। यह ग्रन्थ (में) क्या किसी को घर की बात है ? समझ में आया ? (ये कहते हैं).. ग्रन्थ नहीं है।.. ग्रन्थ क्या आया ? सब एक ही बात-तत्त्व की बात है। ये कहते हैं, वे कहते हैं और शास्त्र कहते हैं। आहा..हा... ! परन्तु पहले इतना तो निश्चय होना चाहिए या नहीं ? कि, आत्मा प्रथम धर्म पाता है, तब राग की एकता है (वह) टूटती है तो उतने स्वरूप में एकाग्र होता है या नहीं ? न्याय से समझना चाहिये कि नहीं ?

अनादिकाल का आत्मस्वरूप शुद्ध आनन्दघन (है)। वह पुण्य-पाप के विकल्प में, शुभाशुभ आचरण में है, वह तो अनादिकाल से है। जब उसको धर्म प्रगट होता है तब उसको क्या प्रगट हुआ ? शुभाशुभभाव प्रगट हुआ ? वह तो है अनादि से। शुभ-अशुभराग है, उससे हटकर शुद्ध चैतन्य में एकाग्र हुआ तो शुभाशुभपरिणाम से रहित स्थिरता थोड़ी हुई और स्वरूप

की प्रतीति हुई। उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दर्शन के काल में पहले होता है। यह नहीं हो तो शुभाशुभभाव में एकता है, वह तो अनादिका की है। शुभाशुभभाव और पुण्य-पाप भिन्न हैं, ऐसा भान हुआ तो राग से रहित स्वरूप की स्थिरता का अंश प्रगट न हो तो एकाग्र हुआ किस में ? राग में तो अनादि से एकाग्र था ही। शुभाशुभराग में एकाग्रता तो अनादिकाल से है, वह नयी चीज नहीं, वह तो अनन्तकाल से करते आया (है)। पुण्य-पाप, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक मिलते ही हैं। समझ में आया ? समझने की चीज है। पैसा-बैसा बहुत आता है और जाता है।

मुमुक्षु :- उसके कारण से आते हैं।

उत्तर :- उनके कारण से आते हैं और जाते हैं। आत्मा के कारण से कहाँ आते हैं ? यह आत्मा के कारण से आता है, देखो ! आत्मा के कारण से, शुभ-अशुभभाव मेरा है, वह आत्मा के कारण से मिथ्या भ्रम होता है। और यह आत्मा पुण्य-पाप के भाव रहित शुद्ध चिदानन्द स्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि में शुद्धभाव का होना, विकार की एकता तूटकर, स्वरूप की एकता होना वह आत्मा से होता है। वह कहा न ? **'(चिदेश करता)..'** चिद-ईश। ज्ञान का ईश भगवान आत्मा है। ज्ञान का ईश्वर, हाँ ! पैसा का ईश्वर नहीं ? लड़के का ? मकान ? बिल्डींग ? इस बिल्डींग का स्वामी नहीं, ये तो जड़, मिट्टी-धूल है, अजीवतत्त्व है।

यहाँ तो कहते हैं कि, भगवान एक समय में शुद्धस्वरूप, पवित्रस्वभाव की दृष्टि हुई, सम्यग्दृष्टि शुभ-अशुभभाव होता है, उसका स्वामी नहीं रहता। उसका स्वामी नहीं रहता (तो) दूसरे का स्वामी है ही कहाँ ? समझ में आया ? आहा..हा... ! अरे.. ! अनन्तकाल में वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमेश्वर हैं। वे तो वीतरागभाव की बात करते हैं। ऐसी बात जैन परमेश्वर के अलावा अन्य में कभी तीनकाल तीनलोक में ऐसा एक शब्द और एक न्याय भी नहीं होता। समझ में आया ?

ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्दर की उपस्थिति में समवसरण में भगवान की दिव्यध्वनि में आया, अरे... ! आत्मा अनादिकाल से अस्वरूपाचरण तूने किया है। देह का आचरण तो उसने किया ही नहीं। देह का आचरण, जड़ का आचरण, पर का आचरण तो किया ही नहीं। तो क्या किया ? अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि में शुभ और अशुभराग का आचरण किया।

आहा..हा... ! स्वरूपाचरण नहीं किया, पर का आचरण नहीं किया। डॉक्टरजी ! शरीर का कुछ नहीं किया। जड़ का आचरण आत्मा नहीं कर सकता। स्वरूप का आचरण अनन्तकाल से किया नहीं। तो किया क्या ? अनन्तकाल से निगोदसे लेकर नौंवी ग्रैवेयक तक (गया उसमें किया क्या ?) शुभ और अशुभभाव, विकारी भाव का आचरण करके मैं कुछ ठीक करता हूँ, ऐसी मिथ्यादृष्टि में अस्वरूपाचरण किया है। बराबर है ?

अब कहते हैं कि, भैया ! अरे.. ! तेरा समय आया, यह काल आया, तुझे मनुष्यदेह मिला। भगवान ! उसकी रीत तो समझ ले। उसकी रीद-पद्धति-विधि क्या है ? - वह तो समझ ले। समझने के बाद प्रयोग में-प्रयत्न में रखेगा। समझे बिना प्रयोग कैसे करेगा ? समझ में आया ? आहा..हा... !

कहते हैं, भगवान आत्मा अनादिकाल से अस्वरूपाचरण.. अस्वरूपाचरण का अर्थ ? कि, शुभ-अशुभ विकारी भाव का का वर्तन किया। वर्तन किया-आचरण किया, अनुष्ठान किया वह अस्वरूपाचरण है। वह अपने स्वरूप का आचरण नहीं, विभाव आचरण है। वही किया न ? दुकान-बुकान का कुछ किया नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- सारा दिन करता है न ?

उत्तर :- कौन करता है ? कौन कहता है ?

मुमुक्षु :- सब लोग कहते हैं।

उत्तर :- दुनिया कहती है तो झूठ कहती है। भगवान कहते हैं कि, राग-द्वेष का आचरण तुम चौबीस घंटे करते हो। जड़ का कर सकता नहीं। आँख की एक पलक भी ऐसे घुमा नहीं सकते। वह तो जड़ है, उसका तुम क्या करते हो ? कठिन बात, भाई !

मुमुक्षु :- गाना गाता है।

उत्तर :- कौन गाना गाता है ? वह तो वाणी का आवाज निकलने की जड़ की क्रिया है। अन्दर विकल्प आता है, भजन करूँ, ऐसा शुभभाव (आता है)। बस ! इनती मर्यादा (है)। जड़ का बोलने का आचरण होता है, पैर ऐसे-ऐसे थन.. थन.. होते हैं वह जड़ की पर्याय है। वह

आत्मा कर सकता है ? कठिन बात, भाई ! डॉक्टर कहते हैं कि, उत्तर में ऐसा सुनने में नहीं आता। उसके लिये ही कहा, दूसरी जगह छोड़कर हम सुनने कि लेयि ही आते हैं, ऐसा उसमें लिखा था। बात यह है। समझ में आया ? आहा..हा... ! बहुत जगह जाना था, (सब) छोड़कर यहाँ आये न ?

कहते हैं, अरे... ! भगवान ! तूने कभी स्वरूपाचरण कैसे होता है उसे तूने लक्ष्य में भी लिया नहीं। और हम कुछ करते हैं, करते हैं, करते हैं, ठीक करते हैं ऐसे ही बफम् में - भ्रम में जिंदगी चली गई। भाई ! कहाँ गये भाई ? गये ? है ? तुम्हारे पिताजी का सब उड़ा दिया। ३० साल से रस नहीं खाते थे, हरित नहीं खाते थे। लेकिन व कबूल करते हैं कि, बात तो सच्ची है। आहा..हा... ! अरे.. ! भगवान ! बापू ! तू कौन चीज है ? तेरा स्वरूपाचरण-अनुष्ठान, तेरी क्रिया क्या ? देह की क्रिया तेरी नहीं और राग विकल्प उठते हैं, वे भी विकारी क्रिया (है), तेरी मूल चीज नहीं। इसीलिये तो कहा, चैतन्य उसकी क्रिया है। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर में सन्मुख दृष्टि करके चैतन्य का परिणमन, विकार की रुचि छोड़कर, चैतन्य का परिणमन-क्रिया हुई, वह आत्मा की क्रिया, वह आत्मा की क्रिया, वह स्वरूपाचरण भाव (है), वह शुद्धभाव (है)। समझ में आया ? आहा..हा... !

'यह तीनों भेदरहित एक, अखंड...' देखो ! राग तो नहीं, पुण्य-पापतो नहीं परन्तु मैं आत्मा शुद्धभाव मेरा काम, कर्ता चिदेश आत्मा हूँ और चैतन्य की निर्मल परिणति हुई वह क्रिया, (ऐसे) तीन भेद भी लक्ष्य में नहीं रहते। तब अन्दर निर्विकल्प अभेद दृष्टि होती है। उसको स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। आहा..हा... ! कभी सुना ही नहीं। वीतराग के मार्ग में हम आये... भगवान.. भगवान (करते हैं)। उनको उल्लास तो बहुत आता है, प्रमोद तो आता है। 'अलीगढ़' में उसने बहुत किया था। लेकिन थोड़ा-थोड़ा समय निकालना चाहिए। यह चीज.. ओ..हो..हो... ! अनन्तकाल में चीज रह गई, जो करने की चीज (थी उसका) ख्याल भी नहीं, समझ भी नहीं, रुचि भी नहीं तो प्रयोग कहाँ से करेगा ? समझ में आया ? आता है न ? मारवाडी की कोई चीज ऊँची होती है, हम को तो नाम भी नहीं आता। मारवाडी की ऊँची चीज आती है न ? राजा जैसी। ऐसा कुछ सुना था। घेवर जैसा चीज। उसका दूसरा नाम था। मारवाडी बहुत ऊँची चीज बनता हैं। एकबार सुना था, अपने को कहाँ मालूम है। लेकिन विधि कैसे होती

है, उस विधि की खबर नहीं तो बनाये क्या ? समझ में आया ?

हमें हलुआ बनाना है, हलुआ। कैसे करना ? देखो ! पहले आटा है (उसे) घी में सेकना। बाद में गुड़ का पानी डालना। लेकिन घी बच जाये ऐसा (करना है) तो क्या करना ? कि, गुड़ का पानी पहले डालना। आटे में पहले गुड़ का पानी डालकर आटा ठीक से सिक जाये, बाद में घी डालना। (अगर) गुड़ के पानी में आटा सेककर घी डालेगा (तो क्या) हलुआ होगा ? तुझे विधि की खबर नहीं। हलुआ नहीं होगा, लूपरी होगी। लूपरी समझते हो ? फोड़े के उपर (लगाते हैं न) ? फोड़े पर। फोड़े पर बाँधने के काम नहीं आती ? लूपरी बनाती है, उसे स्त्री कहे, देखो ! बहन ! घी देकर डालना। घी बहुत भी नहीं गिरे और घी बिलकुल नहीं गिरे, ऐसा भी नहीं। थोड़ा.. थोड़ा.. थोड़ा। बहुत गिरेगा तो बिगड़ जायेगा, बिलकुल घी नहीं होगा तो पोटीस नहीं होगी। इसलिये हमारे यहाँ भाषा है। सास बहु को कहे तब ऐसा कहे, 'देखो ! बहु ! पोटीस बनानी हो तो जातु-वळतु घी डालना। जातु-वळतुं।' आप की हिन्दी में कोई भाषा होगी, हम को खबर नहीं। ऐसा थोड़ा रहे भी नहीं, थोड़ा बिलकुल न रहे ऐसा भी नहीं और बहुत रह जाये ऐसा भी नहीं। ऐसा हो तो लूपरी होगी। ये तो पहले गुड़ के पानी में आटा सेके, बाद में घी डालते हैं। शिरा (तो) नहीं होगा (लेकिन) लूपरी भी नहीं होगी। विधि की खबर नहीं।

ऐसे अपना सम्यग्दर्शन, चारित्र-स्वरूपाचरण कैसे प्रगट होता है ? मालूम नहीं (और) करने बैठे, हमारा आत्मा ऐसा है, हमारा आत्मा ऐसा है.. क्या आत्मा ऐसा-ऐसा ? समझ में आया ?

कहते हैं, अ..हो... ! भगवान आत्मा.. ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन चीज हैं। शिरा में भी तीन चीज होती है न ? यहाँ अभी आयेगा, देखो ! हलुआ में तीन चीज आती है न ? आटा, घी और शक्कर या गुड़। यहाँ आयेगा, देखो ! ये तनी चीज आयेगीष एक हो जाते हैं। भगवान आत्मा ध्याता, ध्यान और ध्येय का भी विकल्प और भेद नहीं रहता और कर्ता, कर्म क्रिया का भेद भी नहीं रहता। तो क्या रहता है ?

'**(बाधारहित) हो जाते हैं।**' अभिन्न अखंड एकस्वरूप हो जाते हैं। '**शुद्ध उपयोग को निश्चय पर्याय...**' देखो ! आत्मा का शुद्ध व्यापार। पुण्य-पाप का व्यापार अशुद्ध व्यापार है, वह

तो बन्ध का कारण है। यहाँ तो मोक्ष का कारण वर्णन करना है न ? तो कहते हैं कि, शुद्ध व्यापार। '**शुद्ध उपयोग की निश्चय पर्याय...**' देखो ! वह पर्याय है। शुभ-अशुभराग था, वह विकारी पर्याय थी। उसको छोड़कर ज्ञातास्वरूप चिदानन्द में एकाग्र होकर शुद्धपर्याय '**प्रगट होती है...**' देखो ! भाषा कैसी ली है ? '**शुद्ध उपयोग की (निश्चल) दशा प्रगटी...**' प्रगटी। वह दशा अनादि की दशा नहीं थी। वस्तु अनादि की थी। शुद्ध ज्ञान, आनन्द अनादि की चीज थी। परन्तु अन्तर एकाग्र हुआ तो शुद्धता प्रगट हुई। शुद्धता पर्याय में प्रगट हुई, यह पर्याय प्रगट हुई, उसका नाम स्वरूपाचरण, उसका नाम संवर, निर्जरा, उसका नाम शुद्ध उपयोग, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- माँ कहे, लेकिन उसे विधि आनी चाहिए न ? किये बिना, उलट पुलट करे.. पहले कहा न ? कंजूस बाई हो तो (कहे), तुझे सस्ता कर दते हैं। खाना किसको ? .. खायेगा ? जो करे वह खाये। यहाँ तो कहतेहैं कि, आत्मा करे और अपना अनुभव अपने भोगने में आता है। पर्याय अपनी भोग्य और भोक्ता आत्मा। दो भेद भी अन्दर अनुभव में नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। दूसरा तो नहीं, दूसरा तो नहीं लेकिन उसका आत्मा, मैं आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप (हूँ), उसकी दृष्टि, ज्ञान पहले हुआ तो यह आत्मा कर्ता, यह कार्य, मैं भोक्ता और यह भोग्य, ऐसा भेद भी वहाँ रहता नहीं। दूसरा तो भोक्ता नहीं, दूसरा तो भोग्य नहीं लेकिन अपने में भोक्ता-भोग्य का भेद नहीं रहता। आहा..हा... ! समझ में आया ?

प्रथम स्वरूप की दृष्टि होने के काल में ऐसा होता है। बाद में दृष्टि रहती है, स्वरूपाचरण भी रहता है, शुभ-अशुभराग रहता है। समकिती धंधे में भी दिखने में आवे, भोग में भी दिखने में आवे तो राग है। (वे) समझते हैं, (यह) पाप है, यह पुण्य है। पृथक् रखते हैं, अपने साथ जुड़ान नहीं करते हैं-ऐसा भेदज्ञान हुआ। पर्वत में एक बिजली का प्रहार हुआ और पत्थर के दो भाग हो गये, वह बाद में रेण से इकट्ठे नहीं होते। रेण समझे ? बाद में जुड़ते नहीं। ऐसे भगवान आत्मा ज्ञानानन्द का स्वरूप प्रभु पूर्णानन्द प्रभु, पुण्य-पाप के राग से एकबार अन्तर भेद हुआ, भेद हुआ (बाद में) एक नहीं होता। समझ में आया ?

'**प्रगट होती है...**' देखो ! भाषा है न ?

तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा;
प्रगटी जहाँ दृगज्ञान-व्रत ये, तीनधा ऐकै लसा।।

कितने काल से यह कंठस्थ है ? कंठस्थ नहीं है ? अर्थ की खबर नहीं। अर्थ समझे बिना भाषा क्या करे ? तोते को पूडी दे (और कहे), बोल, रघुराम। वह जाने कि, यह रघुराम होगा। पूड़ी रघुराम। पूड़ी कहते हैं न ? पूड़ी, पूड़ी और सिंग का दाना, सिंग का दाना, मुँगफली देते हैं। बोल पोपट, रघुराम। रघुराम। उसे लगे कि, यह रघुराम होगा। पूड़ी और दाना रघुराम होगा। भान नहीं, रघुराम कौन और ये कौन ? यह तो पूड़ी है और दाना है। ऐसे इसे भान नहीं है कि, क्या आत्मा है ? यह क्या कहते हैं ? '**तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्ध उपयोग की निश्चल दशा...**' क्या ? (सिर्फ) भाषा है या कुछ भाव है उसमें ? समझ में आया ? आहा..हा... !

'**प्रगट होती है; जिसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान...**' देखो ! व्रत का अर्थ यहाँ सम्यक्चारित्र कहा। भाई ! शब्द में व्रत (शब्द) है। फिर भी वहाँ सम्यग्दर्शनस्वरूप दृष्टि के काल में शुद्ध श्रद्धा हुई, शुद्ध ज्ञान हुआ और आचरणरूपी व्रत-चारित्र हुआ। (राग है), वह व्रत नहीं है, स्वरूप की स्थिरता वही निश्चय व्रत है। आहा..हा... ! बाद में पंचम गुणस्थान योग्य बारह व्रत का विकल्प आता है, लेकिन वह शुभराग है। समझ में आया ? अन्तर में एकाग्र होकर जितनी शान्ति और स्थिरता प्रगट हुई, वही अपना स्वरूपचारित्र और आचरण, सच्चा मुक्ति का कारण वह है। आहा..हा... ! समझ में आया ? अब तो कितने पुस्तक प्रकाशित हो गये हैं। अभी (एक मुमुक्षु की) ओर से पन्द्रह हजार पुस्तक प्रकाशित हुए। 'छहढाला' बहुत नि:शुल्क दी। पन्द्रह हजार। 'आत्मधर्म' में, 'सन्मति सन्देश' में बहुत गई है। (इनको) पूरा कंठस्थ है। उसकी बहुत प्रीति है, इसलिये प्रभावना की। ये व्याख्यान (रेकोर्डिंग) होते हैं, वह भी उनकी ओर से हैं। पुस्तक प्रकाशित करना है। पुस्तक प्रकाशित करना है। कंठस्थ है, बहुत साल से कंठस्थ है। बहुत साल से कहते हैं, व्याख्यान करो, व्याख्यो करो। एक बहन कहती थी। वह भी कहती थी कि, 'छहढाला' का व्याख्यान होना चाहिए। तो यहाँ चलते हैं। समय नहीं मिले, कहाँ संसार की इतनी झंझट। ओ..हो.. !

कहते हैं, भगवान आत्मा..! एक पंक्ति में कितना भर दिया है ! बहुत भरा है न ? भैया ! आहा..हा...! 'दौलतराम' पण्डित। लेकिन पण्डित अपने घर की बात कहां करते हैं ? अपनी हिन्दी भाषा में जोड़ दिया। भाव तो भगवान का है, जो परमार्थ अनादिकाल से चला आया वह भाव है। कहते हैं कि, जब भगवान आत्मा स्वरूप की दृष्टि करके, स्वरूप का आचरण करते हैं तो उसमें तीनों आ गये। सम्यग्दर्शन भी आ गया-शुद्धस्वभाव की प्रतीत। ज्ञान आ गया। अनुभव यह आत्मा, ऐसा ज्ञान; और स्थिरता हो गई वह चारित्र। समझ में आया ? ये स्वरूपाचरणचारित्र मोक्ष का मार्ग है। बन्धन से छूटने का यह एक ही उपाय है। आहा..हा...! बाकी सब बँधने का (उपाय) है। ओ..हो...!

'यह तीनों एकरूप-अभेदरूप से शोभायमान होते हैं।' 'लसा' का अर्थ किया, देखो ! **'शोभायमान होते हैं।'** भगवान आत्मा..! आठ वर्ष की लड़की को भी सम्यग्दर्शन होता है, तब स्वरूपाचरण होता है। उसमें क्या लै ? मेंढ़क को भी होता है। क्या कहते हैं ? मेंढ़क.. मेंढ़क। भेदज्ञान करता है। देह छोटा-बड़ा तो जड़ है। पुण्य-पापका राग विकार ही। उससे मेरी चीज भिन्न है, ऐसी दृष्टि में एकाकार होकर, उस समय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों शोभायमान होते हैं। अर्थात् राग का आचरण शोभायमान नहीं। राग का ज्ञान, समझे ? पुण्य-पाप का ज्ञान। शुभाशुभ मेरी चीज है, ऐसी प्रतीति शोभायमान नहीं। वह तो मिथ्या है। शुभाशुभराग का ज्ञान मिथ्याज्ञान है और शुभाशुभराग मिथ्याआचरण है-तीनों शोभायमान नहीं। यह शोभायमान (है)। अन्तर्मुख होकर शुद्धस्वभाव पवित्र स्वभाव पहले सत्समागम से समझ लिया हो, सुना हो बाद में अन्तर प्रयोग काल में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति हुई, वही शोभायमान चीज है, वी मोक्षमार्ग से शोभायमान अपनी दशा है। ये आत्मा को आभूषित किया। आहा..हा...! समझ में आया ? पुण्य-पाप तो आभूषण नहीं है। पुण्य-पाप का बन्धन जड़ है। उसका फल भी धूल बाहर का संयोग है। क्या आया उसमें ? ओ..हो..हो...!

नीचे (फूटनोट में) थोड़ा अर्थ है, देखो ! कर्म किसको कहते हैं ? **'कर्ता द्वारा हुआ कार्य...'** है नीचे ? फूटनोट में है। **'कर्म-कर्ता द्वारा हुआ कार्य।'** नोट में है। कर्म की व्याख्या-कर्ता द्वारा हुआ कार्य। आत्मा स्वरूप का कर्ता, उससे हुई शुद्ध पर्याय, कार्य। आहा..हा...! हन दुनिया का काम कर दे, मकान काम कर दे, दुकान का काम कर दे, पैसे का काम कर दे, तिजोरी

का काम कर दे, बोलने का काम कर दे, हिलने का काम कर दे,.. हराम है तेरी चीज में वह हो तो। तेरी चीज में तो राग-द्वेष का परिणाम का तेरा कार्य अज्ञान से है। स्वभाव में कर्ता द्वारा किया कार्य। शुद्धपर्याय प्रगट हो, श्रद्धा-ज्ञान और स्वरूपाचरण, वही कर्ता आत्मा द्वारा आत्मा की क्रिया है वह कार्य।

'**कर्ता-स्वतंत्ररूप से करे सो कर्ता;...**' देखो ! व्याख्या। स्वतंत्ररूप से करे, वह कर्ता। उसका अर्थ क्या हुआ ? भगवान आत्मा, राग की मन्दता की सहाय लिये बिना, कषाय की मन्दता पहले थी (कि) यह आत्मा ऐसा.. ऐसा.. उसकी सहाय लिये बिना, अपने स्वतंत्र स्वभाव से शुद्धभाव को करे, वह कर्ता कहने में आता है। आहा..हा... ! यह व्याख्या तो अपने 'कर्ता-कर्म अधिकार' में बहुत बार आ गई है। स्कूल में भी छह कारक की व्याख्या चलती है। (भाई) आये हैं या नहीं ? नहीं आये ? हेटमास्टर नहीं आये। रुक गये होंगे। वहां ऐसे आता है, कर्ता-स्वतंत्रपने करे, वह कर्ता। कर्ता का इष्ट, वह कर्म। ऐसा आता है। धर्मी अपने स्वभाव का कर्ता (और) अपना इष्ट अपनी शुद्ध पर्याय। धर्मी को पुण्य-पाप इष्ट है नहीं। पुण्य-पाप का बन्धन का फल सम्यगदृष्टि को इष्ट है ही नहीं। आहा..हा... ! कठिन बात, भाई ! समझ में आया ?

'**कर्ता-स्वतंत्ररूप से करे सो कर्ता।**' यहाँ कर्म लिया न ? कर्ता द्वारा हुआ कार्य। नहीं तो कर्म (उसे कहते हैं), कर्ता का इष्ट, वह कर्म-ऐसा चलता है। करनेवाले की प्रिय चीज वह कर्म। मिथ्यादृष्टि की-करनेवाले की प्रिय चीज विकार। सम्यग्दृष्टि की प्रिय चीज निर्विकारी श्रद्धा-ज्ञान और स्वरूपाचरण। आहा..हा... ! बहुत बात बन्द हो गई। वीतराग का मूल मार्ग था, बहुत रुक गया। फेरफार.. फेरफार.. फेरफार.. (हो गया)। सच्ची बात आती है तो (कहते हैं), ए.. एकान्त हो गया, ए.. एकान्त हो गया। चिल्लाते हैं, करो, पुकार करो, तुम्हारे पास (है)। वह पुकार अन्तर में छूनेवाली नहीं। समझ में आया ? आहा..हा... !

'**क्रिया-कर्ता द्वारा होनेवाली प्रवृत्ति।**' देखो ! भाषा। नीचे है ? भैया ! '**क्रिया-कर्ता द्वारा होनेवाली प्रवृत्ति।**' लो, प्रवृत्ति तो आई। लेकिन कौन-सी प्रवृत्ति ? देह की क्रिया की, शरीर की, वाणी की ? वह नहीं। पुण्य परिणाम की प्रवृत्ति ? नहीं। अन्तरस्वरूप में दृष्टि करके शुद्धभाव करके शुद्धभाव की पर्याय हुई, वही अपनी प्रवृत्ति, वही अपनी प्रवृत्ति (है)। राग से निवृत्ति, वही अपनी प्रवृत्ति (है)। आहा..हा... ! समझ में आया ?

भावार्थ :- 'मुनिराज स्वरूपाचरण के समय...' मुनिराज शब्द लिया है लेकिन साधक लेना। **'साधक स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं तब ध्यान, ध्याता और ध्येय-ऐसे भेद नहीं रहते, वचन का विकल्प नहीं होता; वहाँ (आत्मध्यान में) तो आत्मा ही कर्म, आत्मा ही कर्ता और आत्मा का भाव वह क्रिया होती है, अर्थात् कर्ता-कर्म और क्रिया-वे तीनों बिलकुल अखंड अभिन्न हो जात हैं...'** अपना आत्मा ही शुद्ध कर्ता, शुद्ध क्रिया और शुद्ध परिणाम कर्म। एक हो जाते हैं। ओ..हो..हो... !

ऐसा तो स्वरूपाचरण में यहाँ लिखा है। अनन्तानुबन्धी के अभाव के काल में। देखो ! स्वरूपाचरण चारित्र का घात अनन्तानुबन्धी करता है। पुण्य-पाप की प्रीति अनन्तानुबन्धी भाव है। वह स्वरूपाचरण का नाश करता है। भगवान आत्मा शुद्ध की रुचि की प्रिति वह स्वरूप के आचरण की उत्पत्ति करती है। और विघ्न करनेवाली अनन्तानुबन्धी का नाश होता है। समझ में आया ? एक भी बराबर समझे न, एक ही व्याख्यान.. एक जाने वह सर्व को जाने। एक भाव जाने तो सर्व को जाने। लेकिन एक भी भाव समझ ने की दरकार नहीं और दूसरा कहे तो हाँ.. तीसरा कहे तो हाँ।

मुमुक्षु :- अनेकान्त..

उत्तर :- अनेकान्त का अर्थ क्या ? ऐसे होता है और दूसरे नहीं होता, उसका नाम अनेकान्त (है)। इसी विधि से होता है, दूसरी विधि से नहीं, उसका नाम अनेकान्त (है)। यहाँ खिचड़ीवाद नहीं। समझे ? फुदड़ीवाद, फुदड़ीवाद नहीं है। क्षण में बदल जाये (ऐसा नहीं है)।

'जिस में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक साथ-एकरूप होकर प्रकशानमान होते हैं।' लो ! समझ में आया ? ऐसी अन्तरस्वरूप की दृष्टि, पुण्य-पाप की रुचि, देह का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करके अन्तर में आचरण करना, उसमें तीनों बोल दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ जाते हैं। वही प्रकाशमान होता है, वही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा है नहीं। (विशेष कहेंगे...) (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)